International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

डॉ. श्याम सुंदर दुबे के कथा साहित्य में आदिवासी जीवन

प्रेमलता उपाध्याय"स्नेह"[1], डॉ अनीता नायक[2]

[1]पी.एच.डी. शोधार्थी (हिंदी विभाग) [2.] शोध निर्देशक (विभागाध्यक्षहिंदी विभाग)

[1]हिंदी अध्ययनशाला व शोध केंद्रमहाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय छतरपुर (मध्य प्रदेश)

[2]हिंदी शोध केंद्र-शासकीय ज्ञान चंद्र स्नातकोत्तर महाविद्यालय दमोह (मध्य प्रदेश)

शोध सार -

डॉ. श्याम सुंदर दुबे का दूसरा उपन्यास "मरे न माहुर खाय" सन् 1995 में प्रकाशित एवं "सोनफूला" नाम से 2013 में प्रकाशित हुआ। बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ दुबे का "सोनफूला " उपन्यास आदिवासी जीवन की मूल संवेदनाओं का जीवंत कथाख्यात है।"

जनजातीय जीवत का संस्कृति पक्ष लोक चेतना का एक खुला पृष्ठ है। जनजातीय लोक संस्कृति की आत्मा या लोक भाव भूमि की गहरी चेतना को किसी भी नगरीय या उन्नत संभ्यता के नश्तर का दंश देकर समाप्त या नष्ट नहीं किया जा सकता। आधुनिकता के लोभी लंपट , दुश्चरित्र लोगो से विश्वास में लेकर खिलाये गये माहुर (वि ष) को खाकर भी आदिवासी लोक संस्कृति की श्वासें उसकी भाव भूमि में धड़कती रहेगी और अपनी जीवंतता को बदस्तूर जारी रखेगी। प्रस्तुत शोध डॉ. दुबे के उपन्यास में आदिवासी जीवन की झलकियों को प्रस्तुत कर उनके लोक कथानकों की धडकनों को महसूस करवाने का प्रयास है।

बीज शब्द - डॉ. श्याम सुंदर दुबे, कथा साहित्य, उपन्यास, आदिवासी जीवन

शोध पत्र -

डॉ. श्याम सुंदर दुबे से आत्मयिता, सानिध्य और परिचय पाकर धन्यता रोम-रोम में उसी प्रकार समाहित हो जाती है, जिस प्रकार अपनी माटी की गंध पाकर तन मन प्रफुल्लित हो जाता है। दुबे जी अपने वास्तविक रूप में एक कृषक हो जाते हैं। एकदम से निर्विकार कर्मनिष्ठ , निष्पृह और धरती के पंक में धँस कर भी उसके ऊपर चलने वाली सांसारिकता से विरक्त हैं। डॉ. दुबे का पूरा रचना कर्म उनकी जातीय स्मृतियों का आख्यान है। यह गौरव और गर्व इसलिये है कि वे अपनी स्वयं की जमीन से ही प्राणरस लेकर वैश्विक समाज और परिदृश्य पर उभरी चुनौतियों का सामना करते हैं। स्त्रोत बाहर नहीं उनके स्वयं भीतर है। चिर स्मृतियों की धारा के साथ बहकर भी वे बार -2 अपने उसी पानफूल से महमह घर आंगन और जनम

संघाती दीपक बाती की ओर लौटते है। दुबे जी चतुर्दिक ज्ञान के धनी है। ड़ॉ दुबे के विषय में "जहॉ शब्द उत्सव है के सम्पादकीय में ड़ॉ श्रीराम परिहार लिखते हैं

अंदर का जलस्त्रोत इतना वेगवान और निरंतर है, कि पराजित बोध कहीं संवाद में ओर कहीं व्यवहार में झांई तक नहीं मारता संघर्ष भी जीवन की ताकत बन सकता है यह दुबे जी के साथ रहकर, सीखकर और जीकर पाया जा सकता है। जनम जले हाथों की करम-कथा को मात्र लिखना बाँचना उनका ध्येय नहीं , वे समस्याओं से घिरे मानव की मुक्ति की तलाश अपनी रचनात्मकता में करते हैं। वैश्वीकरण भूमण्डलीकरण और बाजार वाद के अंधड़ में व्यक्ति वस्तु न बन जाये यह उनकी चिंता है।" (1)
डॉ. दुबे का प्रारंभिक जीवन विशुद्ध भारतीय परिवेश के ठेठ व नगर से सुदूर ग्राम , जहाँ आधुनिकता आज भी नहीं पहुंच पायी, में हुआ था। उन्होनें ग्रामीण सदाशयता, कृषि व धर्म के संस्कार , धार्मिक आयोजन, लोक परंपराओं , प्रकृति का सौदंर्यबोध , ग्रामीण जीवन , लोक के आचरण , आत्मीयता व संवेदनाओं के संवेदन को आत्मसात् कर अपनी रचना धर्मिता द्वारा अपने लेखन के संसार में प्रस्तुत किया।

उनके विषय में "डॉ. सरोज गुप्ता" कहती है-
"ऋषि परंपरा के समुज्जवल रत्न डॉ. श्याम सुंदर दुबे जी ज्ञान के असीम भंडार कई विषयों के ज्ञाता, भारतीय संस्कृति के उद्घोषक वक्तृत्व कला पर उन्हे वशवर्तिता प्राप्त है। उनके हृदय से निकली विशुद्ध वाणी श्रोताओं के मन मस्तिष्क को मंत्र मुग्ध कर देती है। वे जब बोलते है तो एक धारावाहिक सुरसरिता प्रवाहमान हो जाती है। इतनी सर्वज्ञता मैनें बहुत कम लोगों में देखी है। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के वौशिष्ट्य को हर व्यक्ति विलक्षण अनुभव करता है।"(2)

डॉ. दुबे का "सोनफूला" उपन्यास सरगुजा की आदिवासी संस्कृति का जीवन दर्शन है। छत्तीसगढ़ के सरगुजा अंचल में वर्ल्ड बैंक योजना के अन्तर्गत निर्माणाधीन "हरनई" बांध के डूब क्षेत्र के विरोध में उठे आन्दोलन और दुष्परिणामों की चिंता को लेकर आदिवासियो की व्यापक चिंता का आख्यान है कथाकार की चिंता स्वाभाविक है। अतः हम डॉ. दुबे के उपन्यास "सोनफूला" जहाँ सोनफूला एक स्थान का नाम है में आदिवासियों के जीवन के स्पंदन को झंझावातों को महसूस करेंगे।

अब सर्वप्रथम हमारे मन में यह प्रश्न आता है कि आदिवासी कौन है? क्यों उन्हें आदिवासी कहते है क्यों उनका जीवन हमारे जीवन से भिन्न है? इन्ही प्रश्नों के उत्तर तलाशते हुए हम आदिवासी शब्द पर आते है।

आदिवासी शब्द दो शब्दों से मिल कर बना है आदि +वासी अर्थात जो व्यक्ति आदि काल से वहां के वासी हो अर्थात प्राचीनकाल से किसी क्षेत्र में निवास कर रहे हो वे आदिवासी कहलाते है।

विनायतक तुकाराम के अनुसार,

"वर्तमान स्थिति में आदिवासी शब्द का प्रयोग विशिष्ट पर्यावरण में रहने वाले , विशिष्ट भाषा बोलने वाले , विशिष्ट जीवन पद्धति से सजे और सदियों से जंगल पहाडों में जीवन यापन करते हुए अपने धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यो को संभाल कर रखने वाले मानव समूह का परिचय करा देने के लिये किया जाता है।"(3)

रमणिका गुप्ता के शब्दों में, आदिवासी कहते है-

"हम प्रकृति पर कब्जा नहीं करना चाहते , न उस पर अपना वर्चस्व जमाना चाहते है। हम साथ-साथ जीने में विश्वास करते है, विनाश में नहीं।"(4)

आदिवासियों के प्रति हमेशा से समाज में दुराभाव व्यक्त हैं हम उन्हें समाज की मुख्या धारा से विलग हेय दृष्टि से देखते है। समाज शास्त्री, साहित्यकार, राजनीतिज्ञ तथा अधिकतर विद्वान अपने पूर्वाग्रहों के चलते आदिवासी समाज का सही आकलन नहीं करते न ही सही परीक्षण कर अपने पूर्वाग्रहों को विस्थापित करते है।

"जंगल माफिया कीमती पेड़ उनसे सस्ते दामों पर खरीद कर ऊँचे दामों पर बेचकर और करोड़पति हो जाता है। वहीं पेड़ काटने के आरोप में आदिवासी दंड काटता है या जेल जाता है। सरकार की ऐसी ही नीतियों के कारण आदिवासी जमीन के मालिक बनने के बजाय पहले मजदूर बने फिर बंधुआ मजदूर।"(5)

सरकार द्वारा जंगलो को साफ कर निरंतर बड़ी-बड़ी परियोजनाएं देश के विकास के नाम पर बतायी जाती है और आदिवासी अपने वनों व जंगलो से खदेड़ दिये गये। उनको अशिक्षा, गरीबी, अंधविश्वास , बेरोजगारी, बदहाली आदि विभिन्न मुसीबतों का सामना करना पड़ता है।

मधु कांकरिया लिखती है-

"आदिवासियों को जंगल, नदी और पहाडों से घिरे उनके प्राकृतिक व पारंपरिक परिवेश से बेदखल किया जा रहा है। अभी तक वह अपने विश्वासों रीतिरिवाजों, लोक नृत्यों और लोकगीतों के साथ कुआँ, मवेशियों, नदियों, तालाबों और जड़ी बूटियों से सम्पन्न एक जन समाज में रहता आया है। उसकी अपनी एक विशिष्ट संस्कृति रही है। उसका अपना विस्तृत अर्थ तंत्र था।"(6)

आदिवासियो के प्रति धारणा बनी हुई थी कि वे असभ्य और बर्बर है। विकास तो हुआ परियोजनाओं के नाम पर उनको उनकी भूमि से विस्थापित कर उनकी जड़ो को उखाड़ दिया गया अब वे दूसरे स्थानों पर स्वयं को पुनः रोपने का प्रयास कर रहे है पर वह मूल विरासत व संवेदना क्षत विक्षत हो गयी है।

डॉ. दुबे के उपन्यास सोनफूला में आदिवासी जीवन- हरिया काछी जब अपना इलाका छोड़ कर विलासपुर भाग जाता है और कुछ वर्षो बाद एक अनजान औरत आके लेखक के पिता के पैर पकड़ लेती है तो वह उनके चरण पकड़ कर रोने लगती है इस बिलासपुरहित आदिवासी महिला का वर्णन इस प्रकार है-
"कुछ कुछ साँवला रंग, गोदनों से भरा हुआ पूरा शरीर , उभरती सी देह- यष्टि, बड़ी बड़ी आँखो वाली वह औरत किसी अजूबे से कम न थी।"(7)

हरिया पत्नी सहित बिलासपुर गया था पर वहाँ त्रिया चरित्र में फँस गया और यह उसकी दूसरी औरत थी जब दोनों में नहीं निभी तो हरिया ने चिट्ठी देकर उसे यहाँ अपने गाँव भेज दिया कि पंडित जी उसके रहने का इंतजाम कर दो। गाँव के सभी लोग उसे काली मोटी बोलते थे उसकी स्थिति पर लेखक ने कुछ इस प्रकार लिखा है-
"इस काली मोटी को कुल देवता की मृतिका मूर्ति में कही रचा बसा होना चाहिये था या भीतर रसोई घर के चूल्हे का हिस्सा बन कर कहीं इसे पक जाना चाहिये था, किन्तु न जाने कितने पुरुषों ने इसे फेंक दिया ठीक उसी तरह जैसे पनही में लगी माटी को छितरा दिया जाता है - गली खोरों में बाटों में । यह काली माटी न जाने कहाँ-कहाँ अटकी? कहाँ-कहाँ दबी पिसी!"(8)

डॉ दुबे ने उक्त उपन्यास में बलू गौंड की एक बात बतायी है कि वह लमानों के टाडे के साथ छत्तीसगढ़ चला गया था और फिर कभी लौट कर नहीं आया। गाँव की औरतें आपस में बाते करते हुए कहा करती थी कि, छत्तीसगढ़ में वशीकरण जानने वाली औरतें होती है जो मर्दो को वश में करके उन्हें विभिन्न जानवरो के रुप में बदल देतीं है। आदिवासी समाज से दूर रहने का एक कारण यह भी है कि लोग सोचते है कि वे टोना टोटका करके लोगों को वश में कर लेते है।
"औरतें चर्चा करती थीं कि बलू गौंड को सोधनियां ने सौध लिया बकरा बना लिया है । छत्तीसगढ़ में सौधनियां होती है। मरद को खडे खडे बकरा या बैल बना देती है। जगन्नाथ पुरी की गैल मे न जाने ऐसे कितने मरद सौध लिये गये है।"(9)

सरगुजा की महिलाएँ परिश्रमी और बलशाली है ऐसा लेखक ने अपने वर्णन में लिखा है वे रेल्वे प्लेटफार्म पर सामान उठाने का कार्य कर रही है। उनकी शारीरिक बनावट व पहनावे का वर्णन लेखक ने इस प्रकार किया है-

"किन्तु कुली के रुप में महिलाओं को देख मैं कुछ देर के लिये चौंका भरे बदन पर थोडे ऊपर उठी हुई धोती पहने कसे हुए वक्ष वाली कुली महिलाये इनमें गजब की फुर्ती व ताकत देख कर मैं दंग रह गया। तीन-तीन चार-चार सामानों को वे बड़ी सहजता से अपने सिर पर रख लेतीं थी।"(10)

आदिवासी बोली में किस सब्जी को क्या कहते है किस तरह से उस जगह का हाट भरता है आदिवासी किस तरह अपनी सब्जियाँ व सामान बेचने शहर आते है सभी का वर्णन उन्होंने अपने सोनफूला उपन्यास में किया है। घर व दुकाने मिट्टी के होते है एवं उनके ऊपर खपरे छाये रहते है।

"मिट्टी के खपरैल घर और छोटी-छोटी दुकाने इतवार को हाट भरती। गाँव देहात से वहँगी में साग सब्जी लादे तमाम दिशाओं से लोग आते। लकड़ी की थुनियों पर छाये छोटे-छोटे के नीचे अपनी दुकान खोल कर बैठ जाते । बाजार में लाउड स्पीकर से एक आवाज बार-बार आती थी "मुष्टा वीरो लेते जाइये मुष्टा वीरो की पुडिया! चार आने चार आने! " यह चूहा मारने की दवाई होती थी। कुछ और आवाजे है- विलभंटी लेते जाइये। विलायती कैसन? पुटु ले लीजिएगा बाबूजी । मेरी फतकुली, टमाटर और कुकुरमुत्ता ही ये चीजे थी।"(11)

आदिवासी क्षेत्र वनों से आच्छादित सधन वृक्षो से परिवर्धित प्राकृतिक छटा से परिपूर्ण होता है। ये वन, पेड़, पौधे, पत्थर, पहाड़, चट्टानें, गुफाएं, घाटियाँ, नाले, नदियाँ, जानवर आदि उनकी संस्कृति के अभिन्न हिस्से है। इसी प्रकृति में इनके देवता है उनकी आस्था विश्वास है। उनका राग रंग, रीति-रिवाज त्यौहार सब इसी प्रकृति के सानिध्य में है। वे इसी प्रकृति की ऋतुओ के साथ तारतम्य बैठा कर नाचे गाते है और तमाम विषमताओ के बावजूद सदा ही आनंदित रहते है। सरगुजा का वसंत इस उपन्यास में इस प्रकार वर्णित है-

"पहली बार मैं सरगुजा के वसंत से रुबरु हुआ था इसलिये मुझे एक नयी सी अनुभूति हो रही थी। सरई के सघन जंगलो के भीतर से सरसराती बासंती हवा के झोंकों में महुआ के फूलों की ताजी गंध समायी हुई थी। जब सरहुल आता है तब जंगल गदबदा जाता है। और एक साथ समूचा जंगल महमहा उठता है। सरहुल और महुवा की गंगा जमुनी गंध पर्व में नहाती सरगुजा की रातों में स्फटिक कण बरसाती चांदनी कुछ ऐसा दृश्य निर्मित करती है जैसे रक्त तारों से खचित मंडप में पुष्प लीला लीन प्रकृति का महा रास उत्सव चला रहा हो।"(12)

जब लेखक जीप के द्वारा आदिवासी क्षेत्र में जाते है जहां कोई भी उनके वहाँ आने से उत्सुकता से मिलते या अजनबी के प्रति जिज्ञासा का भाव नहीं आता। वे छुपे हुए से समय व्यतीत करते है।

"आदिवासियों की अपनी एक जीवन पद्धति है। वे चौकते नहीं। वे अति उत्सुक नहीं होते वे जस के तस रहने के आदी होते है। बाहर के आदमी के प्रति उनमें कोई जिज्ञासा नहीं है। संभवतः व भयभीत रहते है या निर्लिप्त ।"(13)

आदिवासियो के गाँवो का वस्तियों घरो का वर्णन किया गया है किस तरह आदिवासी अपने भोजन जीविकोपार्जन हेतु स्वावलंबी होते है। उनकी आवश्यकताएं बहुत सीमित होती है और वे बहुत कम संसाधनों में अपने जीवन को सुचारु रुप से चलाते है और अपने प्राकृतिक आवासों में सुख शांति के साथ प्रेममग्न रहते है।

"हरे भरे दरख्तों के बीच स्वच्छ और लिपेपुते घरों का एक ऐसा नक्शा प्रकट करता है जैसे किसी चित्रकार ने अपनी सधी कूची से कोई बहुत सुहावना लैड स्केव तैयार किया हो इंदारो पर चढ़ती ढेकुल ! खेतों की जुताई करते हल! पोखर में मछलियाँ पकड़ते लड़के ! आँगन में लहलहाते केला गाछ ! एक शांत मनोरम सा वातावरण! प्रकृति जैसे इन सब में तब्दील हो गयी हो। सब एक मेक ऐकाकार। मनुष्य घर चिडिया चुनगुन ..... सबके भीतर से श्वास लेती वनस्पतियाँ - वनस्पतियों के भीतर से रंगों में उभरते जीवन के अक्स ! सब कुछ लय में! अपनी विराट लय के चक्रीय स्पंदनों में समाया हुआ।"(14)

बहुत सारी आदिवासी जातियाँ विलुप्ती के कगार पर है सरकार के पास सब आँकडे है पर वे स्वयं इस बात से अनभिज्ञ है।

सूदखोर महाजनों के चक्कर में आकंठ डूबे आदिवासियों का सारा जीवन ब्याज चुकाते ही चला जाता है मूल तो वे कभी दे ही नहीं पाते। अनपढ़ होने के कारण हिसाब भी नहीं रख पाते और लगातार मूल और ब्याज के चक्रवयूह में फँस जाते है और वे इन साहूकारों को हाथ जोड़ जोड़ कर उनके एहसानो तले दबे इनके बंधुआ मजदूर बन जाते थे। निरंतर कई कई पीढीयों तक इसी तरह उनके सारे कार्यों को सिर झुकाये करते रहते, कठिन से कठिन कार्य बिना थके बिना रुके मेहनत से मन लगा कर करते। भगवान ने उन्हे अदम्य साहस और बल दिया है उन्हे देख कर ऐसा ही लगता है।

आदिवासी समाज दूसरों की दखलंदाजी बरर्दाश्त नहीं करते। इस मनोस्थिति को समझ कर ही उनके बीच रहा जा सकता है।

"एक चलते पुरजा आदमी है जगत साब। जगतू साब ने आदिवासियों की नब्ज पकड़ ली है। वे उनका विरोध नहीं करते । उनके जीवन गत संस्कारो और आचार विचारो में दखल नहीं देते। वे जानते है यदि ऐसा किया तो फिर आदिवासी उन्हे धता बता देंगें। इसलिये जगत् साब ने निश्चय कर लिया है कि वे आदिवासियों से ब्याज में चाहे जितना रुपया ऐंठते रहें किन्तु कभी भी उनकी जीवन पद्धति में दखल अंदाजी नहीं करेगें।"(15)

सभी जगह के आदिवासी शारीरिक या मानसिक रुप से बीमार होने पर तंत्र मंत्र औझा तांत्रिक के फेर में ही पड़ जाते है। तांत्रिकों को झाडफूँक और उपचार शैली से ये आदिवासी बहुत प्रभावित होते है। उनका इनके समाज में आदरणीय स्थान है। औरतें भी झाडफूँक का काम करती है उनको टोनहिन कहा जाता है उनकी एक अलग ही वेशभूषा होती है लोग उनसे डरते है अपने बच्चों को उनसे छुपा कर रखते पता नहीं वो कुछ उल्टा सीधा टोना टोटका कर दे। इस उपन्यास में बचऊ देवार एक तांत्रिक है और बिहानों टोनहित एक महिला तांत्रिक है। उसकी वेशभूषा का वर्णन इस प्रकार है-

"बिहानो का पूरा शरीर गोदनो से भरा था। कुछ-कुछ खुलते रंग की थी बिहानों। हरे गोंदनों में शरीर का खुला रंग बीच-बीच में चमक जाता था। रतनारी आँखे भरे भरे गाल। गिलट की अठलड़िया करधन कमर में पेटी के समान कसे तेल से चिपचिपाये बालों की पारियां काटे और उनमें आठ-दस हेयर पिन बाँधे। लाल फीता का फूल बनाये। बिहानों का व्यक्तित्व आकर्षक था।"(16)

झांडफूँक के लिये रहस्यात्मक वातावरण बनाया जाता है। नींबू व विभिन्न टोने टोटके की सामग्री रखी जाती बीमार व्यक्ति की चोटी पकड़ कर उसे हिलाता और फिर भूतों से बात करने का प्रयास मंत्रोच्चार आदि के द्वारा झाड़ने की क्रिया चलती रहती थी।

प्रस्तुत उपन्यास में कोड़खू जनजाति का वर्णन किया गया है वे बड़े शर्मिले होते है। वे जंगल में लकड़ियाँ काट कर उन्हे बेच कर अपना जीवन व्यतीत करते थे। जंगल से प्राप्त कंद मूल फल और जंगली जानवरों का ही वे भोजन करते थे। टूटी फूटी सी घासफूस की टपरियों में रहते हैं या पर्वतों की कंदरा खोहो को अपना आश्रय स्थल बना लेते है। अपने रंग और वेशभूषा से वे थोडे डरावने से लगते है। उनकी अपनी भाषा होती है वे नगरीय सभ्यता व मुख्य धारा से कटे अपनी ही दुनिया में मग्न एक अलग समाज के निर्माण में अधिक विश्वास रखते हैं।

"पुष्ठ शरीर मोटी जंघायें। भरी बाहें। अच्छी ऊँचाई। कोड़खू एक दम काले कद्दावर थे। कालिमा इतनी चिकनी थी जैसे समूचे शरीर को तेल पिला दिया गया हो। खुला बदन कपड़े के नाम पर एक लंगोटी वस्तु के नाम पर कंधे पर रखी कुलहाड़ी स्त्रियों का शरीर भी खूब ताकतवर लग रहा था। वे भी घुटनों तक अधोवस्त्र धारण किये थी। बच्चे नंग धडंग थे।"(17)

भोजन के मामले में वे पूर्ण रुपैण प्रकृति पर निर्भर होते है। शुद्ध प्राकृतिक आकेवहा के सम्पर्क से ही उनके शरीर पुष्ठ व चमकदार होते है। उनका खान पान प्रकृति द्वारा उनके परिवेश में उपलब्ध सामग्री पर निर्भर करता है। वे काम करते है कड़ी मेहनत करते है और फिर जो भी मिला उसे खा पीकर प्रसन्नता से अपना जीवन व्यतीत करते है।

"होता यह है ये लोग सुबह से जंगल में निकल जाते है और जो भी जानवर पक्षी मिलते हैं उनका शिकार करते रहते है। यहाँ तक कि साँप, चूहा, खरहा, गोह सबको मार डालते हैं। यदि आग हुई तो भूजकर खा लेते है अन्यथा कच्चे माँस को खाने में भी नहीं हिचकिचाते हैं। इसलिये इनके पास आग का कउड़ा भर है। न बर्तन न भांडे न डब्बल न धेला न बिस्तर न चटाई। कहते हैं यह सरगुजा की आदिमतर जंगली जाति है।"(18)

विभिन्न क्षेत्रों के आदिवासियों के अपने तीज त्यौहार है अपने लोग देवता है जो प्रकृति प्रदात्त है। उनके अपने लोकगीत लोक नृत्य व लोक परिधान है। आदिवासियों में शराब स्थानीय स्तर पर बनायी जाती है। बच्चे, बूढ़े, पुरुष, महिलायें सभी उसे देवता के प्रसाद के रुप में ग्रहण करते है। उसी के नशें में स्वयं से निर्मित वाद्ययंत्रों की धुनों पर धिरकते है और इस असीम प्रेमानंद में खोते जाते है जो नगरीय व तथाकथित आधुनिक समाज में दुर्लभ है। आदिवासियों के देवता वृक्षों में निवास करते है।

"हड़िया में मात गये ये नर्तक किसी और लीलालोक में विचरण कर रहे थे। युवतियों की सुचिक्कण और परिपुष्ट पिडंलियाँ दिख रही थीं। पाँवों में पथरी थी भरे और कसे हुए वक्ष की उठान रंग बिरंगी कंचुकी से उकसने को आतुर हो रही थी। रतनारी आँखों में काजल की कोर उनके युवा व्यक्तित्व को एक मरोर सी दे रही थी। लाल हरे फीते में बँधे चिकने बालो में हेयरपिन चमक रहे थे । जूड़े में गेंदा के फूल और हरे हरे पत्ते खुसे थे। लचकती कमर और सर्पिल बाहुओं की पुष्प वल्लरी में जो लोच थी वह समूचे वातावरण को मादक बना रही थी। भरे-भरे शरीर के छनक पूर्ण शक्ति वाले आदिवासी युवकों ने मयूर पंखो और कौडियों

से अपना श्रृंगार कर सखा था। उनके कपडे भी रंग-बिरंगी पागें थीं। नयन महोत्सव का अपूर्व प्रसंग मेरे सामने खुल रहा था।"(19)

वृक्ष,नदी,नाले,पहाड़ सब उनके देवता है जिस भी प्राकृतिक शक्ति से उन्हे भय महसूस होता है उसे ही वे अपना देवता मान लेते है और उसकी पूजा आरंभ कर देते है उनके अबोध भोले मन में प्रकृति का अपार आदर है वे उसके साथ हँसी खुशी अपना जीवन व्यतीत करते है कभी उसका विरोध नहीं करते है। प्रकृति और प्रेम से भरे उनके गीत पैरों की थिरकन, हाथों की गतिशीलता और कमर की लचकन सबको अपनी लय में समेट लेती है।

"तहूँ भिजै रे महूँ भिजै रे
सावन भादौ के झर ए दे
तहूँ भिजै रे महूँ भिजै रे .....। " (21)

"हो-हो कलांगी रे राइज मोरे!
कालिंगा उपारे लाल गोंदा फूल - कलांगी रे राज मोरे
हो-हो होरे धीरे जावे नोनी पहान लागे
ठेस लगे गिरे तोरी गगरी.....। " (22)

"हो-हो-हो ठेपाराम का मादर गजब ढा रहा था। दोनों दल लय में चूर थे। एक गहन वशा छाया हुआ था। चटुल गति भंगिमा में चिरकते पाँव गुलेल सी लफती कमर और अज्ञात सागर की थाह सी मापती बाँहें। संगीत का समुद्र सा लहरा रहा था। दोनों दल एक दूसरे के करीब आते फिर पीछे जाते एक टिटकार उठती जैसे जंगल में कोई पक्षी बोला हो। बीच बीच में ऐसी आवाजें गुंजायमान हो उठती थी। करमा में शेष रह गयी थी थिरकन और कांपती सी लय। ओझल हो रहे थे हाथ पाँव और शरीर । एक लय बद्ध आवर्तन ही आवर्तन । लहरों पर लहरें। लय का लहराता महासागर.....। "(23)

नशे की लत में आदिवासी बहुत अधिक डूबे हुये है कई बार वे नशे में ही डूबे रहते है और घर के काम काज व औरतों व बच्चों की जिम्मेदारियों का निर्वहन भी नहीं करते तो फिर सारा बोझ स्त्रियों को वहन करना पडता है। पर आदिवासी समाज में विवाह की परम्पराओं में वैविध्य और विचित्रता दृष्टिगोचर होती है। पुरुषों की अकर्मण्यता को देख कर महिलाएं उन्हें छोड कर चली भी जाती है। क्वारी लड़कियाँ भी

अपने मनपसंद साथी के साथ जा सकती है। अतः आदिवासियों में नारी पुरुष के बीच यौनाचार को लेकर अधिक बर्जनाएं नही है। स्वच्छद्ता से वे अपने मनपसंद साथी का चुनाव कर सकते है।

"यहां के देहातों में नारी पुरुष के संबंधों में अधिक कठोरता नहीं है। अपने ढीले ढाले पन के कारण अक्सर स्त्रियाँ मर्दों को छोडतीं रहती हैं। ढूक् विवाह कर लेती हैं। क्वाँरी लड़कियाँ भी मनपसंद लड़कों के साथ भाग जाती है। इस विवाह को उढ़रिया विवाह कहा जाता है।" (24)

"यहाँ की औरत मर्द से अधिक शक्तिशाली होती है कहीं भी काम में लगा दो-जंगल, पहाड़, घर-दुआर , खेत-खलिहान, मरद से अधिक काम करती है। मरद शराब पीकर आलसी बना पड़ा रहता है। यहाँ के लोग खुल कर जीवन जीते है- प्रतिबंधो में बंध कर नहीं।" (25)

आदिवासी लोग बहुत भोले होते है शिक्षा के अभाव में वे सामंत शाही लोगों की चालों और तिकड़मों को समझ नही पाते है। लोगों का यदि प्रतिकार भी करें तो लोग थोडे बहुत पैसे या शराब का लालच देकर उनसे अपने हित के कार्य करवा लेते है इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में भी डूब क्षेत्र में आने वाले लोगों से भी मुआवजा देने के नाम पर सभी से अँगूठे लगवाये जाते है और यदि वे मना करे तो दो चार लोग जबरजस्ती पकड़ कर बलपूर्वक अँगूठा कागज पर लगवा देते है।

"रेवन्यू इंसपेक्टर ने सरवालू साय का अँगूठा पकडा पैड़ की स्थाही पर में भिगोया और एक कागज पर अपने हाथ की ताकत से अँगूठा लगा दिया । अक्सर यही होता है अँगूठा किसी और का होता है और ताकत किसी और की होती है।".....(26)

और अपनी जमीन घर के मुआवजे में मिले पैसे वो गिनकर भी नहीं जानता और रुपयों की गड्डी लिये लिये ही सीधा शराब जिसे सरगुजा में हड़िया कहते है के अड्डे पर जाकर बहुत सारी शराब पीकर नशे मे अचेत हो जाता है उसके सारे रुपये कौन कब कैसे ले लेता है उसे पता ही नहीं चलता है अर्थात वे अपने रुपये पैसे जमीन जायदाद के प्रति सचेत नहीं है।

चूँकि आदिवासी लोग भोले भाले होते है और थोडे से लालच में पड़ जाते है क्योकि उनका जीवन अभावों से ग्रस्त होता है तो एक समय में बहुत सारे आदिवासियों को मिशनरीज ने धर्म परिवर्तन हेतु मना लिया और वे धर्म परिवर्तित करके क्रिश्चियन बन गये। ऐसा आदिवासी अंचलों में वृहद स्तर पर हुआ है। पर

धर्मांतरण के बाबजूद उनकी अपनी माटी से गहन रिश्तेदारी है। "सोनफूला" में कथरीना एक दिन बोल पड़ी- "सर हम लोग हैं तो आदिवासी भले ही हम क्रिश्चिय बन गये हैं। हमारी पूजा अर्चना की पद्धति बदल गयी है किन्तु जंगल, जमीन, पशु-पक्षी, हवा, गंध, उजास, पानी सब तो हमारी नस नस में यहीं का भरा हुआ हैं। यहाँ के लोक गीत मुझे भीतर तक हुलसा देते है। पाँव अपने आप करमा की लय में गतिशील होने लगते हैं। मैं कथरीना जरूर हूँ पर कभी-कभी मेरे भीतर से एक आदिवासी युवती झांकने लगती है।"(27)

भोली भाली आदिवासी युवतियों का ईनाम देने के नाम पर जीपों में ले जाकर दैहिक शोषण होता है। उनके भोले पन का सब फायदा उठाते है। बिचौलिये और दलाल मंत्रियो और ऊँचे पदों पर आसीन लोगों को खुश करने के लिये भोले भाले लोगों का गीत नृत्य आदि प्रस्तुत करते है और यदि उनमें से कोई लड़की किसी को भा जाये तो अपने स्वार्थ के लिये उन्हे फुसला कर दैहिक शोषण के नर्क में भी ढ़केल देते है।

वे भले ही इन राजनीतिक लोगों की खुशी के लिये या सरकार की योजना के लिये या कार्यक्रमों के लिये बड़े-2 शहरों में जाते है, पर वे वहाँ खुशी महसूस नहीं करते उन्हे अपने लोक संगीत, लोक गीत व लोक नृत्यों का आनंद अपने प्राकृतिक परिवेश में ही आता है। बड़े शहरों के सजे धजे पंडालों और चकाचक रोशनी में नहीं।

निष्कर्ष-

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि डॉ. श्यामसुंदर दुबे के उपन्यास "सोनफूला" में सरगुजा क्षेत्र के आदिवासी जीवन के सम्पूर्ण पहलुओं का विशद् वर्णन किया गया है। इस कथानक में आदिवासियों की कुंठाएं, समस्यायें, वेदनाएं, जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं हेतु संघर्ष उनके मनोभावों का सुंदर चित्रांकन किया गया है।

आदिवासी क्षेत्र का प्राकृतिक सौंदर्य , उनकी आस्था विश्वास, देवी देवता, लोक संगीत, लोक गीत, लोक नृत्य आदि का चित्ताकर्षक वर्षन किया गया है।

पढ़े लिखे लोगों की अपने स्वार्थ हेतु उनके साथ कुटिलता छलावा और षडयंत्र के कुचक्रों में फँसाकर उनके साथ दगाबाजी के कई उदाहरण इसमें मिलते है।

उनमें अशिक्षा, आलस , शराब की लत आदि बुराइयों से उनके पिछडेपन और मुख्य धारा से न जुड पाने के कारण का पता चलते है।

अतः यह कहा जा सकता है कि डॉ श्याम सुंदर दुबे ने अपने कथा साहित्य में आदिवासी जीवन का सांगोपांग वर्णन किया है।

संदर्भ ग्रंथ

01. डॉ. श्रीराम परिहार (सं.) : जहाँ शब्द उत्सब हैं : यश पब्लिकेशन नई दिल्ली पृ.स.15

02. डॉ. सरोज गुप्ता (सं.) : जहाँ शब्द उत्सब हैं : यश पब्लिकेशन नई दिल्ली पृ.स.19

03. उमाशंकर चौधरी (सं.) : हासिये की वैचारिकी : विनायक तुकाराम आदिवासी कौन? 2008 अनिमिका पब्लिकेशन नई दिल्ली पृ.सं. 25

04. गंगा सहाय मीणा (सं.) : आदिवासी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिसर्स एंड डस्ट्रिब्यूटर प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली प्रथम संस्करण, 2014 पृ.37

05. रमणिका गुप्ता : आदिवासी विकास से विस्थापन , राधा कृष्णन प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2012, प्र.सं. 12

06. उमा कीर्ति रावत, सतीश पांडे, शीतला प्रसाद दुबे (सं.) : आदिवासी केन्द्रित हिन्दी साहित्य, हिन्दी बुक सेंटर , नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2012 पृ.17

07. डॉ श्याम सुंदर दुबे "सोनफूला" ग्रंथ लोक शहादरा नई दिल्ली पृ.सं.12

08. डॉ श्याम सुंदर दुबे "सोनफूला" ग्रंथ लोक शहादरा नई दिल्ली 2013 पृ.सं.13

09. डॉ श्याम सुंदर दुबे "सोनफूला" ग्रंथ लोक, नई दिल्ली 2013 पृ.सं.13

10. डॉ श्याम सुंदर दुबे "सोनफूला" ग्रंथ लोक, नई दिल्ली 2013 पृ.सं. 18

11. डॉ श्याम सुंदर दुबे "सोनफूला" ग्रंथ लोक, नई दिल्ली 2013 पृ.सं. 19

12. डॉ श्याम सुंदर दुबे "सोनफूला" ग्रंथ लोक, नई दिल्ली 2013 पृ.सं. 23

13. डॉ श्याम सुंदर दुबे "सोनफूला" ग्रंथ लोक, नई दिल्ली 2013 पृ.सं. 28

14. डॉ श्याम सुंदर दुबे "सोनफूला" ग्रंथ लोक, नई दिल्ली 2013 पृ.सं. 31

15. डॉ श्याम सुंदर दुबे "सोनफूला" ग्रंथ लोक, नई दिल्ली 2013 पृ.सं. 32-33

16. डॉ श्याम सुंदर दुबे "सोनफूला" ग्रंथ लोक, नई दिल्ली 2013 पृ.सं. 33

17. डॉ श्याम सुंदर दुबे "सोनफूला" ग्रंथ लोक, नई दिल्ली 2013 पृ.सं. 45

18. डॉ श्याम सुंदर दुबे "सोनफूला" ग्रंथ लोक, नई दिल्ली 2013 पृ.सं. 45
19. डॉ श्याम सुंदर दुबे "सोनफूला" ग्रंथ लोक, नई दिल्ली 2013 पृ.सं. 55
20. डॉ श्याम सुंदर दुबे "सोनफूला" ग्रंथ लोक, नई दिल्ली 2013 पृ.सं. 54
21. डॉ श्याम सुंदर दुबे "सोनफूला" ग्रंथ लोक, नई दिल्ली 2013 पृ.सं. 56
22. डॉ श्याम सुंदर दुबे "सोनफूला" ग्रंथ लोक, नई दिल्ली 2013 पृ.सं. 56
23. डॉ श्याम सुंदर दुबे "सोनफूला" ग्रंथ लोक, नई दिल्ली 2013 पृ.सं. 57
24. डॉ श्याम सुंदर दुबे "सोनफूला" ग्रंथ लोक, नई दिल्ली 2013 पृ.सं. 141
25. डॉ श्याम सुंदर दुबे "सोनफूला" ग्रंथ लोक, नई दिल्ली 2013 पृ.सं. 125
26. डॉ श्याम सुंदर दुबे "सोनफूला" ग्रंथ लोक, नई दिल्ली 2013 पृ.सं. 69
27. डॉ श्याम सुंदर दुबे "सोनफूला" ग्रंथ लोक, नई दिल्ली 2013 पृ.सं. 104